हिन्दी पत्रिकाओं के 'दलित साहित्य विशेषांकों' का दलित विमर्शः एक अध्ययन

डॉ. अश्वनी कुमार,
सहायक आचार्य
मोतीलाल नेहरू सांध्य, महाविद्यालय,
दक्षिण परिसर, दिल्ली विश्वविद्यालय–21

दलित साहित्य की जब हम बात करते है तो सबसे पहले 'दलित' शब्द की उत्पत्ति और प्रयोग पर दृष्टि डालना आवश्यक हो जाता है । संस्कृत और हिन्दी भाषा के शब्दकोशों में हमें निम्नलिखित परिभाषाएं प्राप्त होती हैं । संस्कृत में दलित शब्द द्ल धातु से बना जिसका अर्थ दलना या दलन है । संस्कृत– हिन्दी कोश के अनुसार–''भू. क कृ, दल+क्त 1.टूटा हुआ,चीरा हुआ,फाडा हुआ,टुकडे हुआ । 2.खुला हुआ फैलाया हुआ ।''[1] आधुनिक हिन्दी शब्दकोश में–''जिसका दलन हुआ हो,मर्दित,खंडित दमित । विशेषतः समाज का वह निम्न वर्ग जिसे सामाजिक न्याय और आर्थिक सुविधाऍ प्राप्त न हो ।''[2] मराठी और हिन्दी भाषा के दलित और गैरदलित साहित्यकारों ने इसकी निम्नलिखित परिभाषाएं प्रस्तुत की हैं; वरिष्ठ पत्रकार राजकिशोर के शब्दों में ''दलित शब्द एक वर्गीय शब्द ठहरता है । भारत एक गरीब देश है । यहॉ की आधी आबादी आर्थिक दृष्टि से दलित है । लेकिन जिन्हें दलित कहां जाता है उनका दंश कुछ और ही है । दलित शब्द उन जातियों के अर्थ में रूढ़ होता जा रहा है जिन्हें पहले अछूत या हरिजन कहा जाता था । इनके लिए कानूनी शब्द अनुसूचित जाति है ।''[3]

यहॉ दलित शब्द की उत्पत्ति और परिभाषाओं के बाद एक प्रश्न दिमाग में कोंधता हैं । दलित समाज और साहित्य के संदर्भ में दलित शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम किसने किया ? विकीपीडिया के अनुसार–'' दलित का संबोधन 17शताब्दी में यूरोप में मिलता है,दूसरा भारत के सन्दर्भ में ज्योतिबा फुले ने इस शब्द का पहले प्रयोग किया ।''[4] शोध करने पर पाया गया कि 1934 में मोहन दास करमचन्द गांधी जी ने हरिजन पत्र में दलित शब्द के विषय में जिक्र किया है; गांधी जी कहते है–''जहॉ तक मेरा ख्याल है दलित नाम स्व. स्वामी श्रद्धानंद का दिया हुआ है ।''[5] परंतु यहॉ यह बताना जरूरी है कि स्वयं गांधी जी दलित शब्द की जगह हरिजन शब्द का प्रयोग करते थे–''अन्त्यज इसे हरिजन शब्द को हृदय से ग्रहण करें और गुणों से हरिजन बने ।''[6] डॉ. राममनोहर लोहिया ने भी दलित की जगह हरिजन शब्द का प्रयोग किया है; वे कहते है –''मुझे जनेउधारियों से बैर नहीं । मैं तो उन्हें भी उठाना चाहता हूॅ लेकिन मैं यह जानता हूॅ कि वे तभी उठ सकते हैं जब शूद्र, हरिजन, औरतें और मुसलमान भी उठें ।''[7] अतः दलित समाज के लिए हरिजन, अस्पृश्य, अछूत, जातिसूचक शब्दों का इस्तेमाल हुआ है । संविधान ने उपर्युक्त नामों पर प्रतिबंध लगाया हैं; परंतु आज भी ब्राह्मणवादी मानसिकता वालें लोग इन शब्दों का प्रयोग करतें हैं । खासकर स्वर्ग कहें जाने वालें भारत के गांवों में । डॉ. चंद्रकांत वांडिबडेकर के मत में –''दलित यानी अनुसूचित जातियॉ, बौद्धिक कष्ट उठाने वाली जनता,आदिवासी,

---

1 . संस्कृत–हिन्दी कोश, वामन, शिवराम आप्टे, पृ.–451

2 . आधुनिक हिंदी शब्दकोश, सं गोविन्द चातक, पृ.–273

3 . धर्मयुग, मई–1994, अगर मैं दलित होता, राजकिशोर, पृ.–22

4. विकीपीडिया, इंटरनेट

5. हरिजन, मो. क. गांधी, 10.08.1934

6. वही

7. हिंदू बनाम हिंदू, डॉ. राममनोहर लोहिया, पृ.–34

'दलित' शब्द की यह जाति–निरपेक्ष व्यापक परिभाषा है ।''[8] दलित पैंथर के अनुसार ''दलित का अर्थ है अनुसूचित जाति, बौद्ध, श्रमिक, भूमिहीन, कृषक, भटकने वाली धुमंतू जातियॉ और आदिवासी सभी दलित हैं ।''[9] हिन्दी दलित साहित्यकार मोहनदास नैमिशराय के अनुसार ''दलित शब्द मार्क्स प्रणीत, सर्वहारा शब्द के लिए समानार्थी लगता है । लेकिन इन दोनो शब्दों में पर्याप्त भेद है । दलित की व्याप्ति अधिक है तो सर्वहारा की सीमित । दलित के अन्तर्गत सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक शोषण तक ही सीमित है । प्रत्येक दलित व्यक्ति सर्वहारा के अन्तर्गत आ सकता है लेकिन प्रत्येक सर्वहारा को दलित कहने के लिए बाध्य नहीं हो सकते..... अर्थात सर्वहारा की सीमाओं में आर्थिक विषमता का शिकार वर्ग आता है, जबकि दलित विशेष तौर पर सामाजिक विषमता का शिकार होता है ।''[10]अंत में डॉ. अंबेडकर के अनुसार–''दलित जातियां वे हैं जो अपवित्रकारी होती हैं । इनमें निम्न श्रेणी के कारीगर, धोबी, मोची, भंगी, बसौर, सेवक जातियॉ जैसी चमार, मरे पशु उठाने वाली, सउदी–प्रसूति गृह का कार्य करने वाली ढोल, डफरी बजाने वाले आते हैं । कुछ दिनों पूर्व इनकी स्थिति अर्द्धदास, बंधुवा मजदूर जैसी रही है ।''[11]डॉ अंबेडकर इन सभी जातियों के लिए 'बहिष्कृत' व 'अछूत' जैसे शब्दों का प्रयोग इसी अर्थ में करते थे, जिन्हें आज हम दलित कहते हैं । साहित्य में इस शब्द को प्रचलन में लाने का श्रेय 'ब्लैक पैंथर' को जाता है । अमेरिका में 'नीग्रों मुक्ति के लिए बने ब्लैक पैंथर की प्रेरणा से 1972 में 'दलित पैंथर' की स्थापना हुई । तभी से दलित शब्द तेजी से प्रचलित हुआ । डॉ. श्यौराज सिहं बेचैन ने दलित शब्द के तेजी से प्रचलन के विषय में कहा है–''स्वातंत्रयोत्तर काल में वर्ण–व्यवस्था की मान्यताओं का संकुचन हुआ है तो 'दलित' अवधारणा का विस्तार ।' आजकल न केवल 'दलित' शब्द का प्रचलन प्रमुख रूप से होने लगा है अपितु दलित के लिए दूसरी किसी भी समानार्थक संज्ञा के प्रति नकार देखने में आ रहा है । डॉ. अंबेडकर खासकर अपनी पत्रकारिता के 'बहिस्कृत' शब्द का प्रयोग अधिक करते थे, उनके द्वारा 'दलित' और 'बहिस्कृत' दोनों शब्द एक ही आशय हेतु प्रयुक्त किए गए हैं ।''[12]

'दलित' शब्द 'साहित्य' के साथ मिलकर उन लोगों का साहित्य बन जाता है; जो सदियों से अपमान, तिरस्कार का जीवन जीने के लिए अभिशप्त रहे हैं । 'दलित' शब्द जब 'साहित्य' के मिल जाता है तो साहित्य को एक विशिष्टता प्रदान करता है ....यह साहित्य को एक पृथक धारा प्रदान करता है और नई पहचान से परिचित कराता है । 'साहित्य' के साथ 'दलित' शब्द मिलकर वह 'दलित साहित्य' बन जाता है जो फिर वह 15 प्रतिशत का साहित्य न रहकर धरती से जुड़े 85 प्रतिशत लोगों का प्रतिनिधि साहित्य कहलाता है ।

हम सभी जानते है कि पत्र–पत्रिकाएं वह मंच है जो किसी भी प्रकार के साहित्य, आंदोलन, बहस आदि को सामने लाने में प्रारम्भिक समय से महत्वपूर्ण रही है । हिन्दी पत्रिकाओं ने दलित साहित्य को सामने लाने में विशेष योगदान दिया है । ये पत्रिकाएं दलित साहित्यकारों के साथ–साथ गैर दलित साहित्यकारों ने प्रकाशित की है । यहॉ केवल गैर दलित साहित्यकारों द्वारा प्रकाशित 'दलित साहित्य विशेषांकों' को लेकर बात की जा रही है । यूॅ तो दर्जन से ज्यादा दलित साहित्य विशेषांक अनेक पत्रिकाओं के आये हैं । परंतु यहॉ केवल 'चॉद', 'सारिका', 'हंस', पत्रिकाओं का दलित विमर्श प्रमुख है ।सवाल उठ सकता है; ये तीन विशेषांक ही क्यों? तब कहॉ जा सकता है कि तीनों विशेषांक दलित–विमर्श के वे पायदान है जहॉ दलित–विमर्श की चेतना में अंतर आ रहा है । तीनों पत्रिकाओं का अंतर देखे तो पहले विशेषांक और दूसरे विशेषांक में 49 वर्ष का

---

8. दलित साहित्य और सामाजिक न्याय, सं. डॉ. पुरूषोत्तम सत्यप्रेमी, पृ.–83
9. दलित साहित्य, सं. सोहनपाल सुमनाक्षर, पृ.–02
10. शिखर की ओर, श्री माताप्रसाद अभिनंदन ग्रंथ, डॉ. एन. सिंह, पृ.–312
11. अछूत कौन और कैसे, डॉ. बाबा साहेब अंबेडकर, अनु.डॉ. भदन्त आनन्द कौसल्यायन, पृ.–29
12. हिन्दी की दलित पत्रकारिता पर पत्रकार अंबेडकर का प्रभाव, डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन, पृ.–12

अंतर है; जबकि दूसरे और तीसरे विशेषांक में 29 वर्ष का अंतर । यह अंतर हमें दलित समाज और साहित्य की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक चेतना व दलित–विमर्श को समझने में सहायक होतीहै ।

'चॉद' का 'अछूत अंक' मई 1927 में इलाहाबाद से प. नन्दकिशोर तिवारी के संपादन में प्रकाशित हुआ । युग बदलने के बाद भी चॉद की प्रासंगिकता खत्म नही हुई । इस पत्रिका ने साहित्य ही नही बल्कि विचार के मंच पर भी सुर्खिया बटोरी । समय–समय पर पत्रिका ने अनेक विशेषांक निकाले । तत्कालीन समय को उसने परिभाषित करने की कोशिश की । उस समय के प्रमुख मुद्दे उठाये और उनका विवेचन किया । चॉद के प्रकाशन काल के दौरान स्वाधीनता आंदोलन उत्कर्ष पर था । एक और गांधीजी का अहिंसक आंदोलन था, दूसरी और भूमिगत क्रांतिकारी थे जो बम और पिस्तौल की बदौलत आजादी हासिल करना चाहते थे । गांधी जी के प्रभाव में अगर 'अछूत अंक' निकला तो क्रांतिकारियों के सम्मान में उसने 'फांसी अंक' निकाला ।

इस अंक में साहित्य की सभी विधाओं की रचनाएँ हैं । साहित्यकारों के साहित्य का मूल्यांकन करने के उपरांत यह पाया गया कि अपने समय में केवल गैर दलित साहित्यकार ही नही लिख रहे थे बल्कि कई महत्वपूर्ण दलित रचनाकार जिनमें शोभाराम जी ''धेनु–सेवक'', श्री नयन जी आदि भी थे । जिन्होंने बहुत महत्वपूर्ण रचनाएँ दी; पर आज दलित साहित्य में उनका ज्यादा जिक्र नहीं होता । इसका कारण यह हो सकता है कि यह अंक गांधी जी के प्रभाव में प्रकाशित हुआ । संपादक के मतानुसार–''भारत के सिद्ध योगिश्वर महात्मा गांधी ने एक दिन कहा था–अछूतों का उद्धार हम क्या करेंगे ? हमें तो सबसे पहले अपना ही उद्धार करना चाहिए; क्योंकि हमारा उद्धार होते ही अछूतों का उद्धार स्वयं ही साधित हो जाएगा ।''[13]

सृजनात्मक लेखन के स्तर पर अनेक कविताएं इस विशेषांक में उपलब्धहैं । 'अभिवादन' कविता में पं. चन्द्रनाथ मालवीय ने चॉद को 'अछूत–उद्धारक' के रूप में चित्रित किया है । कवि और चॉद का संवाद कविता के मर्म को महत्वपूर्ण बनाता है । चॉद स्वयं भी अपने को आकाश में 'अछूत' होने के अभ्यास को व्याख्यायित करता है । जैसे के इन पंक्तियों में देख सकते हैं–*'चॉद ! अरे? क्यों बने आज हो–/तुमअछूत–उद्धारक दूत!तुम्हें न यह शोभा देता है/तुम तो हो रत्नाकर–पूत/पर मैं भी 'अछूत' हूँ नभ में सरल नहीं मुझको छूना!!*।'[14] कवि ने सवर्णों से अपील में कहां कि वह दलित समाज को मुख्यधारा में लेने की बात प्रमुखता दी हैं–*तुम यदि इन 'अछूत' पतितों को/अपना लो नत मस्तक कर!/भुवन–पज्य हो जाउँगें तुम–/जग में हैं जैसे शंकर।/*[15]'सांत्वन'– श्री चण्डी प्रसाद जी बी. 'हृदयेश', 'अछूत'–अनुप शर्मा बी. ए. एल. टी., 'अछूत' पं. रामचन्द्र शुक्ल 'सरस' 'अछूत'–अयोघ्या सिंह उपाध्याय 'हरिओध', 'आसार'–कुमारी सरस्वती देवी, 'परिरम्भ'–रामचरित उपाध्याय, 'विश्वासघात'–व्यास मोती लाल शर्मा 'चेतावनी' शम्भूदयाल त्रिपाठी, 'उपहार'–आनन्द प्रसाद श्रीवास्तव, 'कवित'–रामभरासे दीक्षित, 'अभिलाषा'–चन्द्रनाथ मालवीय 'वारीश' ।

इन कविताओं में दलित समाज को वर्णाश्रम–व्यवस्था के अंतर्गत अस्पृश्यता के स्तर पर चित्रित किया गया है । यहॉ गैर दलित कवियों के साथ–साथ दलित कवियों के स्वर में अस्पृश्यता के स्तर पर दलित समाज को उठाने की बात प्रधान है । जब हम समाजशात्रयीय दृष्टि से अध्ययन करते हैं तो पाते हैं कि भारतीय समाज में दलित समाज 'अछूत' वर्णाश्रम–व्यवस्था से भी परे यानी हाशिए पर फेंक दिया गया समाज है । जबकि शूद्र तो मनुस्मृति में मनु के द्वारा षड्यंत्र–पूर्वक ब्रहम्मा के पैरों से उत्पन्न मिथकीय कल्पना का भाग रहा है । इस मिथकीय कल्पना को उपर्युक्त कवियों की कविताओं में देखा जा सकता हैं–*प्रभु के उन्हींपाद–पदमों से/तुम भी तो उत्पन्न हुए/जिनकी अनुकम्पा से ब्राहम्मण/तेज शक्ति सम्पन्न हुए/जिन चरणोंने जन्म दिया*

13. चॉद, मई 1927, सं. पं. नन्दकिशोर तिवारी, पृ.–06

14 .वहीं, भूमिका

15. वहीं

है,/अखिल विश्व के वही तुम्हारी डगमग नौका/स्वयं लगा देवेंगे पार/'सांत्वना'[16] पं, रामचन्द्र शक्ल 'सरस' का स्वर भी वर्णाश्रम–व्यवस्था को बनाए रखने का है, वह भी मनुस्मृति के शरीर के मुख, भुजा, जंघा के समान पैरों को समान महत्व देने की वकालत करते हैं, परंतु इस वर्णाश्रम–व्यवस्था रूपी असमान जाति व्यवस्था को नष्ट करने के विषय में कहीं कुछ भी बात नहीं करते । जबकि 'अछूत' तो वर्णाश्रम–व्यवस्था में कहीं आता भी नहीं है । वह तो भारतीय समाज–व्यवस्था का पंचम वर्ण माना गया हैं । दलित दलित कवि नयन जी की 'अछूत–गौरव'कविता में तत्कालीन वर्णाश्रम–व्यवस्था को तहस–नहस करने का प्रमुख स्वर मिलता है–*'सच है–जो अछूत प्रति रखता,अपने मन में,घृणित–विचार/उसका हृदय परम कलुषित है । स्वयम् निशाचर,निपट गॅवार!/यदि अछूत प्रति यही भावना/रक्खेगा हिन्दू–संसार!/वर्णाश्रम के टुकडे–टुकडे/करदेंगे हम 'कलम–प्रहार ।'*[17]

दलितों के द्वारा हिन्दू धर्म को त्यागकर ईसाई धर्म और मुस्लिम धर्म को अपनाने का स्वर भी यहॉ मिलता है । हिन्दू धर्म जो कि वर्णाश्रम–व्यवस्था पर टिका है; इस धर्म में दलितों को मनुष्य–रूपी जीवन जीने का अधिकार नहीं है । दलितों को स्वतन्त्रता, समानता, बंधुत्व जैसे मानवीय अधिकारों से वंचित किया गया । ब्राहमणवादी मानसिकता वाले लोगों द्वारा दलितों के उपर होने वाले अमानवीय व्यवहार के फलस्वरूप दलितों ने हजारों की संख्यॉ में हिन्दू धर्म त्यागकर ईसाई धर्म और मुस्लिम धर्म अपनाया । यहॉ जोर देकर बताने की आवश्यकता है कि 'चॉद' के इस अछूत अंक का सर्वप्रथम उद्देश्य दलितों का धर्म–परिवर्तन रोकना है । वर्णाश्रम–व्यवस्था को खत्म करना नहीं । डॉ. डी. आर. जाटव के शब्दों मे–''गांधी जी चाहते थे कि वर्ण–व्यवस्था को उसके शुद्ध रूप में व्यावहारिक बनाया जाए । उनकी मान्यता थी कि जो व्यक्ति जिस वर्ण–ब्राहमण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र में पैदा हुआ है, उसे उस वर्ण के निर्धारित व्यवसाय ही करने चाहिए । इस विचार के पीछे उनकी मुक्ति थी कि व्यवसाय की जानकारी और विशेषज्ञता पर आनुवंशिकता पर्याप्त प्रभाव डालती है । गांधी जी ने व्यक्ति पर वंशानुक्रमण का प्रभाव माना । वह वर्ण–व्यवस्था को जन्म–आधारित और पेशेगत मानते थे ।''[18]

कविताओं के अलावा कहानियों में प्रेमचन्द की 'मंदिर' कहानी इस अंक में प्रकाशित हुई है । इसके अलावा 'विसर्जन' चण्डीप्रसाद बी. ए. हरदेयश, नाटक में 'अछूतोंद्धार' जे. पी. श्रीवास्तव बी.ए.एल.एल.बी., आत्मकथा में 'अछूत की आत्मकथा' अध्यापक जहूरबख्श–हिन्दी कोविद ,और बाल–शिक्षा व मनोरंजन साहित्य भी दलित समाज व साहित्य पर केन्द्रित है ।

'मंदिर' कहानी में प्रेमचंद ने सुखिया–मॉ और उसके बेटे जियावन को केन्द्र में रखकर सवर्ण समाज के द्वारा दलितों पर होने वाले अमानवीय व्यवहार को प्रस्तुत किया है । मॉ की अभिलाषा है कि वह अपने बेटे जियावन को एक बार मंदिर में दर्शन करा दे जिससे जियावन स्वस्थ हो जाए परंतु वर्णाश्रम–व्यवस्था के रखवाले पुजारी और सवर्ण समाज उसे मंदिर प्रवेश का अधिकार नहीं देते । बच्चे की मॉ बेटे की प्राणों की रक्षा के लिए किसी भी तरह मंदिर–प्रवेश चाहती है । एक रात बच्चे की ज्यादा तबीयत खराब होने पर वह प्राणों को संकट में डालकर मंदिर में घुस जाती है ; परंतु मंदिर का पुरोहित और गॉव का सवर्ण समाज, मॉ और बच्चे को पीट–पीटकर मार देते है। मॉ बेटे को बचाने के लिए पुजारी को चढावे के लिए उधार लेकर पैसा देती है; परंतु पुजारी खुद अंधविश्वास में धिरा होकर मंदिर प्रवेश नहीं देता । मरने से पहले मॉ का संवाद हिन्दू धर्म पर चोट को उजागर करता है –'पापियों, मेरे बच्चे के प्राण लेकर अब दूर क्यों खडे हो ?....मेरे छूने से ठाकुर

---

16. वहीं, पृ.–52–54

17. वहीं, पृ.–109

18. गांधी, लोहिया और अंबेडकर, डॉ. डी. आर. जाटव, पृ.–11,12

जी को छूत लग गयी ।......लो, अब कभी ठाकुरजी को छूने नहीं आउंगी । ताले में बन्द करके रक्खो, पहरा बैठा दो ।'[19] यहॉ यह बताना भी आवश्यक है कि दलित–समाज के मंदिर–प्रवेश को लेकर प्रेमचन्द ने आगे 'कर्मभूमि' उपन्यास लिखा । प्रेमचंद जो विकल्प दलित–समाज को इस कहानी और साहित्य से देना चाहते थे वह गांधी जी से प्रभावित है; वर्णाश्रम–व्यवस्था के बहुत बडे आधार के खिसकने का डर गांधी जी के साथ–साथ हिन्दू धर्म के ठेकेदारों, साहित्यकारों को हो चला था क्योंकि डॉ. अंबेडकर और दलित–समाज का छोटा ही सही बुद्धिजीवी समूह पैदा हो गया था । इस समूह ने मंदिर प्रवेश, सार्वजनिक पानी जैसे विषय को सभी के लिए उपलब्ध होने, शिक्षा सभी को मिले आदि जैसे अनेक म्ददों को आधार बनाया । डॉ, अंबेडकर दलित समाज के लिए हिन्दू धर्म की जगह एक ऐसे धर्म की आवश्यकता पर शोध कर रहे थे जिसमें सभी मनुष्य को बराबर माना जाता हो । जिसकी परिणती बाद में बौद्ध धर्म में मिलती है ।

'अछूत की शिकायत' आत्मकथा में लेखक जहूरबख्स साहब ने एक दलित व्यक्ति की मर्मस्पर्शी संवेदना से परिपूर्ण कथानक को प्रस्तुत किया है । यह दलित युवक अपने बचपन से लेकर तहसीलदार तक के सफर को ब्राह्मण व्यक्ति को आत्मकथात्मक रूप में बताता है । वह कहता है कि हिन्दू धर्म में रहकर कोई भी दलित व्यक्ति मनुष्य के रूप में जीवन जीने का अधिकारी नहीं हो सकता । जबकि पशु–कुत्ता,बिल्ली को सवर्ण वर्ग सहानुभूति प्रदान करता है । जो दलित समाज सदियों से सवर्ण समाज की सेवा करता रहा उसे सहानुभूति के स्तर पर भी ब्राहमणवादियों ने स्वीकार नही किया–''...तुम लोग ऐसे ही पोच विचारों के कारण अछूतों पर बडा अत्याचार करते हो, उनकी छाया पडने से तुम अपवित्र हो जाते हो, वे दिन–रात तुम्हारी सेवा करते है, फिर तुम उनसे घृणा करते और उन्हें जली–कटी सुनाते रहते हो । कुत्ता भले ही तुम्हारे बिस्तर पर आ बैठे, पर एक अछूत तुम्हारे मकान की सीढी पर पैर नहीं रख सकता, वे तुम्हारे कुँए से पानी नहीं ले सकते, तुम्हारे मन्दिर की ओर दृष्टि भी नहीं उठा सकते आदि कितने ही अत्याचार उनकी सेवा के पुरस्कार हैं ।''[20]लेखक का सवाल है क्या यही हिन्दू धर्म का न्याय है ? वैसे तो हिन्दू धर्म अहिंसा की बात करता है; परंतु वह व्यवहार मे हिंसक है–''हिन्दू लोग अहिंसा की बडी दुहाई दिया करते हैं । छोटे–छोटे कीडों पर अवश्य दया कर सकते हैं, पर उनके हृदय में विशाल और करूणार्द हृदय में साक्षात, मनुष्य शरीर धारी अछूतों के लिए दया का एक भी कण शेष नहीं है, और वह केवल इस कारण कि अछूत, अछूत है । अपवित्र हैं, उनके स्पर्श मात्र से हिन्दुओं की धर्म–नौका अधर्म के तूफान में जा पडती है ।''[21]अतः ऐसे में कोई दलित व्यक्ति हिन्दू–धर्म में रहना क्यों पसन्द करेगा ।

वैचारिक लेखन के अंतर्गत संपादकीय, लेख, निबन्ध, शोध, चित्र–सूची, स्थानीय समाचार, विज्ञापन आदि विषयों को प्रकाशित किया गया है । संपादकीय में पाप की ग्रन्थियॉ, अछूत–सेवा का मूल–मंत्र, अछूत और आत्म–सम्मान, अछूत और शिक्षा, शिक्षा और कुसंस्कार आदि बिन्दुओं को केन्द्र में लेकर दलित समाज के उद्धार पर प्रकाश डाला गया है । संपादकीय के सभी विषयों को एक दृष्टि में रखकर कह सकते हैं कि 'अछूतों की शिक्षा' उनके विकास का पहला चरण है । जब तक दलितों में व्यावहारिक स्तर पर शिक्षा को प्रमुख स्थान प्रदान नहीं किया जाएगा; तब तक उसकी सम्पूर्णता और सफलता सिद्ध नहीं हो सकती । शिक्षा के समुचित संचालन के बिना आत्म–सम्मान की प्रवृति इधर से उधर भटक जाती है और पथभ्रष्ट होकर अपने लक्ष्य को खो बैठती है । यह अंक उतर भारत के साथ–साथ दक्षिण भारत में दलित समाज पर होने वाले शोषण को उजागर करता है–''दक्षिण में दलितों को मंदिर तो दूर की बात है; मंदिर के कई किलोमीटर के

19. चॉद, मई 1927, सं. पं. नन्दकिशोर तिवारी, पृ.–69
20. वहीं, पृ.–72
21. वहीं, पृ.–86

दायरे में भी आना वर्जित है । वहीं ब्राहमण वर्ग दलितों को 'जीवित–पशु' के रूप में पहचानता है । और वहीं दलित भी ब्राहमण को 'निर्जीव–पशु' के रूप में पहचानता है ।''[22] प्रो. दयाशंकर दुबे का लेख दलित जातियों का सामाजिक, शैक्षणिक, धार्मिक आदि स्थितियों पर शोध–परक लेख है जिसमें लडकें–लडकियों पर विस्तार से शोध किया गया है ।

'अछूत–स्त्री' यानी अछूत समाज की महिलाओं का जब तक सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि विषयों के स्तर पर विकास नहीं होगा तब तक अछूत समाज का उद्धार होना नामुमकिन है । इस विशेषांक में जो लेख स्त्री पर केन्द्रित है, उनमें भी इसी विचार को प्रेषित किया गया है । संपादक के मतानुसार–'''चांद' के इन्हीं संपादकीय विचारों के अन्तर्गत हम एक नहीं, अनेक बार सप्रमाण यह बात सिद्ध कर चुके हैं कि समाज–सुधार का कोई आंदोलन उस समय तक सफल नहीं हो सकता, जब तक कि नारी–जाति का समुद्धार न हो । ''[23] अपने समय में ज्योतिराव फुले ने अपनी पत्नी सावित्री बाई फुले को पढना–लिखना सिखाया, जो इस देश की पहली महिला–शिक्षिका बनी । मैं यहॉ जोर देकर कहना चाहता हूँ कि हमें शिक्षक–दिवस सावित्रीबाई फुले के जन्म–दिवस पर मनाना चाहिए । बाद में डॉ. अंबेडकर ने संपूर्ण स्त्री–समाज के लिए 'हिन्दू कोड बिल' बनाया, जिसको तत्कालीन भारतीय संसद ने पास नहीं किया; जिसके विरोध में डॉ. अंबेडकर ने मंत्री–पद से इस्तिफा दे दिया । समग्र रूप में यह अंक दलित साहित्य के प्रारंभिक विकास को अपनी वैचारिकी के स्तर पर कुछ सहयोग देता नजर आता है परंतु शुद्ध दलित–चेतना के स्तर पर नहीं । जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है अंक पर गांधी जी की वैचारिकी प्रभावित है । यहॉ एक सवाल पैदा होता है कि संपादक ने डॉ. अंबेडकर की दलित–समाज पर होने वाले आंदोलन का कहीं जिक्र तक नहीं किया जबकि अप्रैल 1927 में 'बहिस्कृत भारत', 'बहिस्कृत हितकारिणी सभा' का संचालन दलितों को सम्मानजनक जीवन जीने के लिए शुरू किया था । और वह अपनी लेखनी द्वारा वर्णाश्रम–व्यवस्था का विरोध कर रहे थे–''मेरे लिए यह चातुर्वर्ण्य जिसमें पुराने नाम जारी रखे गए हैं, घिनौनी वस्तु है, जिससे मेरा पूरा व्यक्तित्व विद्रोह करता है... यह चातुर्वर्ण्य सामाजिक संगणन प्रणाली के रूप में अव्यावहारिक घातक और अत्यंत असफल रहा है ।''[24]

'सारिका' पत्रिका 'टाइम्स ऑफ इंडिया' समूह से प्रकाशित होने वाली प्रमुख पत्रिका थी । पत्रिका ने अप्रैल–मई 1975 में कमलेश्वर के संपादन में 'दलित साहित्य', समांतर कहानी विशेषांक बम्बई से प्रकाशित किया । पत्रिका की विशेषता कहानियों और कथा–जगत की संपूर्ण सामग्री को प्रकाशित करना था । विशेषांक मराठी दलित साहित्यकारों के सहयोग से निकला था । यूँ तो डॉ. अंबेडकर के मृत्यु के बाद 'दलित पैंथर' ने साहित्य के साथ–साथ दलित आंदोलन को प्रमुखता प्रदान की थी । दलित साहित्य की सर्वप्रमुख पत्रिका 'आस्मितादर्श' संपादक प्रा. गंगाधर पानतावणे ने महाराष्ट से प्रकाशित की । इस पत्रिका का जन्म साहित्य की नयी प्रवृतियों व नये विचारों को आदान–प्रदान करना था । डॉ. बाबा साहेब आंबेडकर का मानवतावाद, उनकी विज्ञाननिष्ठा और उनके अंतर्मन का विद्रोह 'अस्मितादर्श' की प्रेरणाशक्ति हैं। इसलिए साहित्य में जिन शोषितों, दलितों और बहिष्कृतों का नाम भी लेना उचित नहीं माना जाता था, उनके चित्रण के लिए नहीं, बल्कि उन्हीं के लिए और उन्हीं द्वारा साहित्य–निर्माण कराने का प्रयत्न यह पत्रिका कर रही थी ।

सारिका के इस अंक में दस चुनिंदा मराठी दलित साहित्यकारों की कहानियों को प्रकाशित किया गया हैं; जिनमें 'मकुल मुलाणी'–अणाभाउ साठे, 'मॉ'–बाबू राव बागूल, 'शारदी'–अर्जुन डांगले, 'विटाल'–दया पवार, 'दुमंजिला घर'–वामन होवाल, 'अनादि बधं'–नामदेव लक्ष्मण ढसाल, 'पत्र'–शंकरराव खरात,

---

22. वहीं, पृ.–10

23 . वहीं, पृ.–11

24 . बाबा साहेब डॉ. अंबेडकर संपूर्ण वाड्.मय, खण्ड–1, भारत सरकार, नई दिल्ली, 1993, पृ.–81

'पानी'–भास्कर चंदन शिव, 'पत्तल'–केशव मेश्राम, संस्कृति'–भीमराव शिरवाले प्रमुख हैं । कहानियों के अलावा दया पवार की दादू मारूति इंदूरीकर से भेटवार्ता, विशिष्ट लेख–'दलित साहित्यः प्रक्रिया रूपरेखा–श्री नेरूरकर, लघुकथाएं, घटना कथाएँ एंव टिप्पणियॉ, स्थायी स्तम्भ के अंतर्गत संपादकीय–मेरा पन्ना हरिशंकर परसाई का व्यंग, मोहन राकेश और अनिता औलक की बातचीत आदि विषयों को रखा गया है । इस अंक की रूप–सज्जा प्रख्यात चित्रकार जे. पी. सिंघल ने की है । आदिवासी महिलाओं के चित्रों को आकर्षित शैली में प्रस्तुत किया गया है ।

'मकुल मुलाणी' कहानी पहली उन कहानियों मे से एक है, जो दलित समाज के आर्थिक–पक्ष को उजागर करती है । दलित साहित्य के प्रारम्भिक दौर में बहुत कम रचनाकार थे जो अपनी रचनाओं में आर्थिक–पक्ष को छू रहे थे । सभी रचनाकारों का रचनात्मक विषय सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीति पक्ष पर बल था परंतु आर्थिक पक्ष पर ज्यादा नहीं जबकि डॉ. अंबेडकर के आर्थिक–दर्शन में केवल दलित नहीं बल्कि भारतीय और विश्व का मजदूर एक है । 22 अगस्त 1937 के 'जनता' समाचार–पत्र में 'स्वतंत्र मजदूर पार्टी का 'घोषणा–पत्र' प्रसिद्ध हुआ । इस पार्टी की स्थापना 15 अगस्त 1936 में हुई थी । जो भारतीय श्रमिक आन्दोलन में एक महत्वपूर्ण घटना थी । संपादकीय में डॉ. अंबेडकर ने कहा–''अछूतोद्धार आंदोलन केवल सामाजिक आंदोलन ही नहीं बल्कि उसका आर्थिक पक्ष भी उतना महत्वपूर्ण है । 'धर्मपरिवर्तन' की घोषणा करते हुए अछूतों ने अपने सामाजिक आंदोलन की भविष्यकालीन रूपरेखा स्पष्ट कर दी थी । सामाजिक आंदोलन के विषय में स्पृश्य श्रमजीवी वर्ग से उनकी असहमति हो सकती है किन्तु आर्थिक आन्दोलन में सछूत तथा अछूत दोनों ही वर्गों के किसानों तथा मजदूरों के हित एक–दूसरे से जुडे हुए हैं। श्रमिकों के आर्थिक आंदोलन में धर्म, जाति, छूआछूत, प्रांतीयता आदि से उपजे कृत्रिम भेदों का कोई स्थान नहीं होना चाहिए । पूँजीवादी, जमींदार, साहूकार यह वर्ग दलित या गैर दलित दोनों मजदूर वर्गों का शोषण करते हैं । दलित वर्ग यह अच्छी तरह जानता है कि श्रमिकों का आन्दोलन तभी सफल होगा जब वे धर्म, जाति, देश आदि के भेदभावों को भुलाकर मजदूर वर्ग की एकता में विश्वास करें ।''[25] परंतु एकता का सूत्र केवल कृत्रिम था उसके अन्दर तो जातिप्रथा का जहर भरा पडा है । भारत में जितनी भी टेड यूनियन, श्रमिक आंदोलन संगठन आदि है उनका नेतृत्व और संचालन केवल और केवल ब्राह्मणवादी हाथों की कठपुतली रही है। डॉ. अंबेडकर ने 12,13 फरवरी 1938 को मनमाड, जिला नाशिक, जी. आई. पी. रेलवे दलित वर्ग कामगार सम्मेलन में जो अध्यक्षीय भाषण दिया वह न केवल दलित मजदूरों बल्कि भारत और विश्व के मजदूरों, किसानों, आम नागरिकों, गरीबों आदि का आर्थिक विपन्नताओं और विषगंतियों से छुटकारा पाने का मुक्ति–संग्राम घोषणा–क्रांति–पत्र था । यही घोषणा–पत्र दलित साहित्य के आर्थिक–दर्शन को मजबूत बनाता है । घोषणा–पत्र के अनुसार–''मेरे ख्याल से ऐसे दो शत्रु है जिनसे इस देश के मजदूरों को निपटना ही होगा । वे दोनो शत्रु हैं–ब्राहमणवाद और पूंजीवाद । हमारे आलोचकों का आरोप कुछ तो इसलिए उत्पन्न होता है, क्योंकि आलोचक लोग ब्राहमणवाद को एक शत्रु के रूप में शुमार और स्वीकार नहीं कर पाते हैं, जिस शत्रु से कामगारों को निपटना है । जब मैं ऐसा कहता हूँ कि ब्राहमणवाद वह शत्रु है जिससे जूझना ही होगा तो मैं नहीं चाहता कि मेरे शाब्दिक कथन को लेकर गलत व्याख्या की गलतफहमी हो । ब्राहमणवाद से मेरा आशय एक समुदाय के रूप में ब्राहमणों की शक्ति, उनके अधिकारों और हितों से नहीं है । मैं उस अर्थ में इस ब्राहमणवाद शब्द का प्रयोग नहीं कर रहा हूँ। ब्राहमणवाद से मेरा मतलब है–स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व की भावना का निषेध । उस अर्थ में यह सभी वर्गों में व्याप्त है सिर्फ ब्राहमणों तक ही सीमित नहीं है, हालांकि यह बात अपनी जगह बिल्कुल सही है किवे

25. जनता, 22अगस्त–1936, सं. डॉ. बी. आर अंबेडकर

ब्राहमण ही थे,जो इस निषेधात्मक भावना के आदि प्रणेता और प्रवर्तक रहे ।''[26] इसी ब्राहमणवादी मानसिकता के कारण भारत में मजदूर कभी भी एकसूत्र में नहीं बंध सके । दलित तो केवल टॉटपट्टी बिछाने और उठाने तक सीमित रह गया ।

'पत्र' शंकर राव खरात की महत्वपूर्ण कहानी है । महार जाति के राम्या व्यकित जो अननढ है; जिसके पास बंबई से बहन का एक पत्र आया है लेकिन वह पढना नहीं जानता । पत्र को पढवाने के लिए राम्या गांव के मास्टर साहब के पास जाता है जो ब्राहमण जाति से है । मास्टर राम्या के पत्र को पढने के एवज में कई दिनों के लिए लकड़ी काटने के लिए कहता है । राम्या तैयार हो जाता है । मास्टर की पत्नी का संवाद राम्या के शोषण के प्रतीक में देखा जा सकता है–'इस पर भीतर से कर्कश आवाज आयी–अजी आज के लिए क्या, चार–आठ दिनों के लिए कटवा लीजिए । यह सुनते ही राम्या ने स्वयं से बड़बड़ा कर कहा –तेरे बाप के घर का महार है क्या, अच्छा पकड़ा गया ।'[27] ऐसा नहीं है कि राम्या ने मास्टर के घर के काम पहले नहीं किये थे; परंतु आज तो पत्र पढ़वाने के लिए काम करना था । राम्या ने कई दिन की लकड़ी काट दी । काफी चिचौरी करने के बाद जब मास्टर ने पत्र पढ़ा तो राम्या उदास हो गया–'अरे राम्या, बंबई में तेरी कोई बहन थी ? हॉ, थी! धोंडाबाय । अरे उसे पिछले मंगलवार को देव–आज्ञा आ गयी, आज दस दिन हो गये ।'[28] उसके बाद मास्टर ने पत्र राम्या के शरीर पर फेंक दिया । रास्ते में अपनी डबडबायी आंख को उन्होंने पोंछ लिया । अतः शिक्षा के न होने से दलित समाज दूसरे के लिए खैरात करने के लिए विवश हो जाता है और सामाजिक शोषण का भी ।

'मॉ' बाबूराव बागूल की स्त्री–जीवन पर केंद्रित मर्मस्पर्शी कहानी है । पंड्या नामक किशोर जिसके बाप का देहांत हो चुका है । अब केवल मॉ है । स्कूल में मास्टर मॉ के विषय में बहुत अच्छी बाते बताता है । पड्या घर आकर मॉ को सम्मान देना चाहता है परंतु पुरानी यादें और आसपास के सामाजिक अंधविश्वासों से वह मॉ पर शक करता है । पिता भी मॉ को शक की नजरों से देखता था क्योकि मॉ सुन्दर है । जब भी पत्नी काम करके घर आती तब पिता उसे शंकाभरी नजरों से उपर से नीचे तक देखता यहॉ तक उसके कपड़ों और शरीर तक में....'जब वह दहलीज पर आती तब वह उसके पैर,जाधं की साड़ी, कमर, पल्लू, पेट, छाती, चोली, बाल, होंठ, गाल संदेह की नजरों से देखता । चेहरे पर जरा भी फर्क दिखने पर उसका तनबदन जल जाता और वह झल्ला कर पूछता–आज कौन यार मिला था...छिनाल बता...बता..!! और फिर वह उसकी कमर में पैसे ढूॅढता पैसे न मिलने पर पूछता–उधारी पर है क्या ?'[29] बच्चा पड्या का बचपन घोर निराशा में बीत रहा होता है; चाल के सभी बच्चे और बड़े उसकी मॉ को अनाप–शनाप नाम देते । जिस वजह से बच्चे के मन मे मॉ के प्रति जहर भर गया । बच्चा नहीं जानता था कि जो लोग उसकी मॉ को गन्दी कहते थे वही पुरूष अपनी पत्नी को छोड़कर उसे विवाह करने के कई प्रस्ताव दिये थे परंतु मॉ ने अपने पड्या के लिए अपनी जवानी नष्ट कर दी थी । विधवा स्त्री का जीवन उस पर जवान होना जैसे गिद्धों के बीच मांस का टुकडा । अपनी बच्चे की सुरक्षा के लिए और घर चलाने के लिए मॉ एक पुरूष से नैतिक रिश्ता बनाना चाहती है परंतु पड्या उस रिश्ते को अनैतिक मानता है क्योकि जिन गिद्धों के वह साथ वह नहीं गई उन्होंने उसे बदनाम ही नहीं किया बल्कि उसका बलात्कार भी किया । पड्या को मॉ जब नये कपड़े देती है तब पड्या मॉ से बगावत

26 . भारतीय श्रमिक आन्दोलन, दशा–दिशा और दलित परिप्रेक्ष्य, डॉ. अंबेडकर, अनु. मा. रामगोपाल आजाद, पृ. –40,41

27 . सारिका, 'दलित साहित्य विशेषांक', अप्रैल–मई, 1975, सं. कमलेश्वर, पृ.–53

28 .वहीं

29. वहीं, पृ.–27

करते हुए कहता है–'डाल दे, अपनी–अपनी लाश पर....छिनाल–रांड! और संताप से किसी तरह कहते हुए वह बाहर भाग निकला ।'[30] मॉ टूट जाती है जो अब तक नहीं टूटी थी ।

'गारदी' अर्जुन डांगले की हिन्दुवादियों की सांप्रदायिकता पर लिखी सशक्त कहानी है । एक बेरोजगार युवक जो अपनी बहन सुनंदा के यहॉ रहता है । रोजगार नहीं मिलने की निराशा उसके कदम को बोझिल कर देती है । युवक का जीजा उसे पेड़णेकर सेठ से मिलने भेजता है । सेठ के पास पहुॅचने पर वह पाता है कि कम्पनी कोई नहीं है वह तो हिन्दुवादियों का अड्डा है जहॉ पर –'दीवार पर शिवाजी महाराज का एक भव्य चित्र टंगा था ।' जहॉ हिन्दुवादी साम्प्रदायिक दंगों की योजना बना रहे थे और जिन कम्युनिष्टों द्वारा हड़ताल की गई थी उनकी जगह दूसरे लोगों की भर्ती करना । एक व्यक्ति युवक को कहता है–'अरे, तुझे पता नहीं क्या? लाल झंडे वालों ने हड़ताल कर दी है । नये लोगों की भर्ती हो रही है ।'[31] युवक भर्ती होने से मना करता है लेकिन उसे जाने नहीं दिया जाता–'भूखा मर जॉउगा पर यह धोखेबाजी नहीं करूंगा । मजदूर पेट के लिए हड़ताल करते है और हम जाकर यह सब करें ।'[32] साम्प्रदायिक शक्तियां उसे कम्युनिष्ट समझकर मार देते है–'साला लाल झंडे वाला है । एक ने उत्तर दिया और फिर वहॉ खड़ा प्रत्येक व्यक्ति उसकी ओर आने लगा ।'[33] उसी तरह 'अनादि–बंध' आदि कहानियों में दलित साहित्यकारों ने उदात्त जीवन–मूल्यों से विषय को आधार बनाकर साहित्य रचा । ये कहानियां कथानक और शिल्प के स्तर पर किसी गैर–दलित साहित्यकार से कम नहीं ठहरती । ये सभी कहानियॉ तत्कालीन समय के यथार्थ को उजागर करती है; जैसा कि संपादक कमलेश्वर ने कहा कि –''आज का मराठी दलित साहित्य संमातर साहित्य की तरह जब सम्यक् परिवर्तन की बात करता है, तो मात्र साहित्य की चिंताओं तक सीमित नहीं रह जाता–क्योंकि दलित साहित्य उन शपथों से अगाह है जो हर युग में ली गयी हैं; पर कार्यान्वित नहीं की गयी है; आज दलित साहित्य का उन्मेष मात्र साहित्यिक धटना नहीं है, यह ऐतिहासिक धटना है और यह इतिहास का संपूर्ण, वैज्ञानिकता और विराट सामाजिक पुनर्मूल्यांकन करना चाहता है ।''[34] यहॉ जोर देकर कहां जा सकता है कि दलित साहित्य उन निरपेक्षतावादियों, सौंदर्यवादियों और निराशावादियों के लिए भी एक उत्तर है जो यह मान बैठे है के साहित्य की कोई सक्रिय भूमिका अब नहीं रह गयी है । इसी साहित्य ने दलित पैंथर जैसे लड़ाकू सामाजिक और रातनीतिक आंदोलन को जन्म दिया है । क्योंकि इन सभी रचनाकारों के वैचारिक–मूल्यों में डॉ. अंबेडकर के साहित्य के विषय पर दिये गए विचार प्रमुख है–''इसलिए मुझे साहित्यकारों से अपनी सारी शक्ति लगाकर कहना है कि आप अपने साहित्य निर्माण द्वारा उदात्त जीवन–मूल्यों और सांस्कृतिक मूल्यों को विकसित करें अपने विचार संकुचित वाणी को चार दीवारी से बाहर निकलने दें, अपनी लेखनी का प्रकाश अपने आंगन में ही न ही न रोक ले, उसका तेज गांव–गांव के गहन अंधकार को दूर करने के लिए फैलने दे । यह भूल न जायें कि अपने इस देश में उपेक्षितों, दलितों और दुःखियों का अपना अलग संसार हैं उनके दुःख उनकी व्यथा समझें और अपनी सृजन शक्ति उनके जीवन को उन्नत करने के लिए होम दे। यही सच्ची मानवता होगी ।''[35]

---

30. वहीं, पृ.–29
31. वहीं, पृ.–34
32 . वहीं, पृ.–34
33. वहीं, पृ.–34
34. वहीं, पृ.–संपादकीय
35. डॉ. भीमराव अंबेडकर, 'दलित साहित्य सम्मेलन पत्रिका', 17 जनवरी 1976, से ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित–साहित्य का सौदंर्यशास्त्र में उद्धृत, पृ.–72

वैचारिकी लेखन के स्तर पर श्री नेरूरकर का लेख 'दलित साहित्यः प्रक्रिया एवं रूपरेखा' विशेष है । इस लेख में दलित साहित्य के प्रारम्भ, विकास और प्रभाव के साथ–साथ प्रगतिशील, मार्क्सवादी आंदोलन के संबंधों पर प्रकाश डाला गया है । साथ ही 'दलित पैंथर' महाराष्ट बौद्ध साहित्य सम्मेलन, आम्ही–बाबूराव बागूल, 'अस्मितादर्श'–गंगाधर पानतावणे, 'विद्रोह'–नामदेव ढसाल आदि मराठी पत्रिकाओं, दलितों का हिन्दू–धर्म से नवबौद्ध धर्म में धर्मांतरण, 1927 में किया गया महाड़ आंदोलन आदि ऐतिहासिक धटनाओं को केन्द्र में रखा गया है । इसके अलावा घटनाओं, टिप्पणियों में गैर दलितों रचनाकारों ने दलित समाज पर होने वाले अमानवीय व्यवहार जिसमें दलित महिलाओं, बच्चियों के साथ बलात्कार, हिंसा, जान से मारना, घरों को जलाना, सार्वजनिक कुँओं से पानी नहीं लेने देना आदि प्रमुख घटना रही हैं । अतः कहां जा सकता है कि इस पत्रिका ने डॉ. अंबेडकर के जन्म–दिवस पर निकाले अंक को वास्तविक श्रद्धांजलि प्रदान की है । दलित साहित्य के विकास को आगे ले जाने में यह अंक हमेशा याद किया जायेगा ।

'हंस' अगस्त–2004 का दलित साहित्य पर 'सत्ता–विमर्श और दलित' विशेषांक प्रकाशित हुआ । पत्रिका की शुरूआत मुंशी प्रेमचन्द ने की थी । तब से लेकर आज तक हंस ने अनगिनत हिन्दी साहित्यकारों और अनेक विमर्शों को साहित्य के केन्द्र में लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है । 'दलित साहित्य' पर केन्द्रित 'हंस' का यह विशेषांक गैर दलित हिन्दी पत्रिकाओं का वर्ष 2008 तक का अंतिम विशेषांक ठहरता है । पत्रिका के संपादक प्रसिद्ध कथाकार राजेन्द्र यादव है । दलित रचनाओं को छापने के दृष्टिकोण से यह दावा करते है कि उन्होंने ही सबसे पहले हंस में दलित साहित्यकारों को जगह दी । हंस के पुराने अंकों पर नजर पड़ती है तब नब्बे के दशक में दलित साहित्यकारों की एकाध रचनाएं प्राप्त होती है । दलित रचनाओं को छापने की वजह से हंस और राजेन्द्र यादव चर्चा के विषय में आते है ।

इस विशेषांक में दलित और गैर दलित साहित्यकारों को जगह मिली है । विधाओं के स्तर पर वैचारिकी, कहानियॉ, कविताएं, साक्षात्कार, पत्र–टिप्पणी आदि प्रमुख है । स्वानुभूति वाले पक्ष में सूरजपाल चौहान, बलवीर माधोपुरी, आलेख–पक्ष में डॉ. तुलसीराम, डॉ. धर्मवीर, वीरभारत तलवार, जयप्रकाश कर्दम । जबकि कहानीकारों मे ओमप्रकाश वाल्मीकि, प्रहलाद चन्द दास, कवियों में स्वामी अछूतानंद, कृष्ण परख आदि को रखा गया है । साक्षात्कार–पक्ष में नामवर सिंह, कमलेश्वर, मनोहर श्याम जोशी, मैनेजर पाण्डेय, उदय प्रकाश, अशोक वाजपेयी, विमल थोराट, रमणिका गुप्ता प्रमुख है ।

हंस के 'दलित साहित्य विशेषांक' को लेकर एक प्रश्न दलित साहित्य के पाठकों के सामने आता है कि इसने इतनी देर से विशेषांक क्यों प्रकाशित किया ? जबकि इससे पहले अनेक चर्चित पत्रिकाओं के विशेषांक प्रकाशित हो चुके थे । क्या संपादक राजेन्द्र यादव की दलित साहित्य के प्रति सक्रियता केवल मंचों व साक्षात्कारों के स्तर पर वाहवाही लूटने की थी ? या कुछ और । परंतु फिर भी कहां जा सकता है; कि इस अंक ने 'हिन्दी दलित साहित्यकारों' को जो स्वयं अपनी पत्रिकाएं निकाल चुके थे व दलित साहित्य को भद्र साहित्य के समक्ष खड़े कर चुके थे को एक साथ मंच पर लाने में विशेष भूमिका निभाई ।

अतः समग्रता में कहां जा सकता है कि दलित साहित्य के विकास में हिन्दी पत्रिकाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है; चाहें उनको दलितो ने निकाला हो या गैर दलितों ने । यहॉ बल देकर कहूं तो इन 'दलित साहित्य विशेषांकों' की दृष्टि से । इसलिए गैर दलित संपादकों द्वारा प्रकाशित विशेषांकों ने दलित साहित्य को नई पहचान दिलवाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । राजेन्द्र यादव के शब्दों में कहा जायें के–''अब समय दलित साहित्य का है । कितने दिनों तक ललित साहित्य को ओढ़ते–बिछाते रहोगे ।''[36]

---

36. दलित साहित्य रचना और विचार, डॉ. पुरूषोतम सत्यप्रेमी, पृ.–07